'इण्डियन आइडल' या 'इण्डियन ईडियट'

● प्रसेन, अजय

'मीडिया-बूम' आने के कारण भारत में रोज़ ही नये-नये चैनल आ रहे हैं। कुछ चैनल भारतीय मीडिया दिग्गज खोल रहे हैं तो वहीं विदेशी चैनलों ने भी अपने भारतीय संस्करण शुरू कर दिये हैं। भारत में नये-नये चैनलों के आने के साथ आपस में इनकी गलाकाटू प्रतियोगिता भी शुरू हो गई है। इस प्रतियोगिता ने अब इतना घिनौना और मानवद्रोही रूप धारण कर लिया है कि उसे शब्दों में बयान कर पाना मुश्किल है। इन चैनलों पर तरह-तरह के कार्यक्रम प्रसारित हो रहे हैं जो किसी भी अन्य क्षेत्र से बेहतर तरीके से पूँजीवादी संस्कृति के मानवद्रोही चरित्र, दीवालियेपन और संवेदनहीनता को सामने लाते हैं।

मिसाल के तौर पर, हम यहाँ दो प्रमुख 'ट्रेण्ड्स' का ज़िक्र करना चाहेंगे। एक रुझान है विभिन्न चैनलों पर शुरू हुई प्रतिभा की खोजें (?)! दूसरा रुझान है विभिन्न समाचार चैनलों पर शुरू हुए सनसनीखेज अपराध सम्बन्धी कार्यक्रम।

सबसे पहले हम प्रतिभा की खोज वाले कार्यक्रमों का जायज़ा लेते हैं। इन कार्यक्रमों में जो दो कार्यक्रम सबसे ज़्यादा प्रसिद्ध हुए हैं, वे हैं 'इण्डियन आइडल' और 'फेम गुरुकुल'। इण्डियन आइडल दरअसल एक अमेरिकी टेलीविज़न टैलेण्ट हण्ट शो की तर्ज़ पर बना है। दरअसल, इसका पूरा सेट, असफल प्रतिभागियों का अपमान करने के तौर-तरीके, फिर उन्हें रोते हुए दिखाने का तरीका, ये सब उसी अमेरिकी शो की तर्ज़ पर किया गया है। अमेरिकन आइडल और इण्डियन आइडल जैसे कार्यक्रमों का एक ख़ास मक़सद होता है। जिन समाजों में गैर-बराबरी बेहद ज़्यादा हो, अवसरों की समानता न हो, और एक असमानतापूर्ण प्रतियोगता होती हो, वहाँ सक्षम लेकिन संसाधनहीन नौजवानों में एक असन्तोष होता है। और यह असन्तोष व्यवस्था और सामाजिक ढाँचे में लोगों के यक़ीन को कमज़ोर बनाता है। ऐसे में अगर कुछ ऐसी मिसालें प्रायोजित तौर पर बना दी जाएँ जिन्हें देखकर आम घर का नौजवान भी दिनों-रात मचलता रहे तो सामाजिक ढाँचे के प्रति लोगों की रही-सही आस्था को बचाने का प्रयास किया जा सकता है। दूसरी बात, इन प्रतियोगिताओं में हिस्सा लेना कोई हँसी-खेल नहीं है। जजों द्वारा आपकी परख तो बाद में होती है। पहले आपको ढेर सारे एसएमएस और फोन करने पड़ते हैं, वह भी किसी विशेष मोबाइल फोन सेवा कम्पनी के ही फोन से! यानी के आपके पास अगर मोबाइल नहीं है तो पहले आप मोबाइल ख़रीदिये; मोबाइल है, लेकिन वह विशेष मोबाइल सेवा नहीं, तो पहले एक और मोबाइल सेवा लीजिए; उसके बाद भी इस बात की कोई गारण्टी नहीं होती कि आप प्रतियोगिता में शामिल हो ही पाएँगे। चलिये मान लिया कि आप शामिल हो गए, तो भी विजेता बनने के लिए कुछ विशेष शर्तें हैं। विजेता का फैसला इन कार्यक्रमों में दर्शकों द्वारा भेजे गए एसएमएस के द्वारा होता है। अब जो लड़का बिहार, उत्तर प्रदेश, या उड़ीसा जैसे ग़रीब प्रदेश से गया है वह अच्छा गाते हुए भी शायद हार जाए क्योंकि मुम्बई के लड़के को ज़्यादा दर्शकों के एसएमएस मिलेंगे, क्योंकि पूरे बिहार में उतने मोबाइल फोन नहीं जितने अकेले मुम्बई में हैं, महाराष्ट्र की तो बात ही छोड़ दें। लेकिन इस पूरे खेल में गायन में कोई भी जीते विनर विभिन्न कम्पनियाँ ही होती हैं। मिसाल के तौर पर, एक प्रतियोगिता के महज अन्तिम राउण्ड में भेजे गए एसएमएस के द्वारा एयरटेल ने 6 करोड़ रुपये का शुद्ध लाभ कमाया। उसी प्रकार इन कार्यक्रमों को प्रसारित करने वाले चैनलों का मुनाफ़ा भी करोड़ों में था। फेम गुरुकुल दूसरा ऐसा कार्यक्रम है। कोई सोच सकता है कि गुरुकुल तो पुराने ज़माने में हुआ करते थे जहाँ राजाओं-महाराजाओं के बच्चे शिक्षा लेने जाया करते थे। पर आज सड़ती-बदबू मारती पूँजीवादी संस्कृति की कोख से नये गुरुकुल पैदा हुए हैं। यह कार्यक्रम भी उसी तर्ज़ पर बना है जिस पर कि इण्डियन आइडल। इस कार्यक्रम में फूहड़ता, उपभोक्तावादी बीमार मानसिकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। अजीबो-गरीब शक्लें बनाए, कानों में कुण्डल डाले, बात-बात पर लटके-झटके मारने वाले फेमगुरू किसी और को क्या सिखा सकते हैं? ये बेहद श्रेष्ठतावादी होते हैं। जब मुम्बई का एक आम आदमी इन भड़ैंतों की मजलिस में पहुँच गया तो इन फेम गुरुओं ने न सिर्फ उसका मज़ाक उड़ाया बल्कि उसे मूँगफली बेचने की सलाह दी। दरअसल, इस तरह के कदम गरीब लड़के-लड़कियों को कुण्ठित कर देने के लिए उठाए जाते हैं। जो भी हो, इतना तो साफ़ हैं कि प्रतिभा ढूँढने की इस नौटंकी से प्रतिभाओं की असली खोज नहीं हो सकती। प्रतिभा को स्थान देने का माद्दा उसी व्यवस्था में होता है जो मानवीय गरिमा का सम्मान करना जानती हो। जो यह समझती हो कि हर मनुष्य में कोई न कोई क्षमता ज़रूर होती है। और अधिकांश क्षमताओं का रिश्ता उस परिवेश से होता है जिसमें किसी व्यक्ति की परवरिश हुई होती है। ग़रीब घर में पलने बढ़ने वाले व्यक्ति को जाहिरा तौर पर ज़्यादा हुनर विकसित करने का मौका नहीं मिल पाता क्योंकि वह तो होश सम्भालने से पहले ही घर की जीविका सम्भालने लगता है। इसलिए आम घर के नौजवानों को इन नौटंकियों के चक्कर में नहीं फँसना चाहिए और अपना समय हालात बदलने की तैयारियों को देना चाहिए।

दूसरा रुझान है समाचार चैनलों पर आने वाले अपराध-आधारित कार्यक्रम का। ऐसे कार्यक्रमों की तो ऐसी बाढ़ आई हुई है कि क्या कहने! वारदात, सनसनी, मेट्रो क्राइम, क्राइम वॉच, मैं भी जासूस, अपराधी कौन, एफआईआर, आदि जैसे कार्यक्रम हर समाचार चैनल पर प्रसारित हो रहे हैं। इनकी प्रस्तुति

(पेज 9 पर जारी)

युद्ध में इराक़ी जनता पर रासायनिक हथियारों का इस्तेमाल अमेरिकी वहशियों के लिए कोई नई बात नहीं थी। इससे पहले वियतनाम में भी अमेरिका में सैकड़ों रासायनिक हथियारों का प्रयोग किया था। नापाम बम, एजेण्ट ऑरेंज जैसे तमाम प्रतिबन्धित हथियारों का अमेरिका ने वियतनाम में प्रयोग किया था। एजेण्ट ऑरेंज एक ज़हर होता है जो 28 किस्म की बीमारियों को पैदा करता है। यह डाईऑक्सिन होता है। वियतनाम में उस समय 500,000 लोग इस ज़हर के इस्तेमाल से मरे थे और 650,000 लोगों में अभी भी इस ज़हर से पैदा हुए मानसिक और शारीरिक विकार पाए जाते हैं। इससे पहले जापानी जनता पर नाभिकीय हमला जिसका कोप वह अभी तक भोग रही है, भी अमेरिकी बर्बरता की एक मिसाल है। कोरिया में अमेरिका ने जो ताण्डव मचाया था वह भी किसी से छिपा नहीं है।

युद्ध में घातक रासायनिक हथियारों के इस्तेमाल के बाद इराक़ी जनता के भीतर लगातार पनपते आक्रोश को दबाने के लिए जुल्म, अत्याचार, दमन और उत्पीड़न की कोई कसर अमेरिकी बर्बरों ने नहीं छोड़ी है। इराक़ की अबू गरेब जेल और ग्वान्तानामो बे जेल वे नाम हैं जो मानवता को शर्मसार कर देने वाली यातनाओं से पहचाने जाने लगे हैं। लेकिन लगातार जारी इराक़ी जनसंघर्ष को दबाने में अमेरिकी साम्राज्यवादी नाकाम रहे हैं। उल्टे यह प्रतिरोध अमेरिका के लिए नाक की फुंसी बन गया है। अमेरिका इराक़ में कुछ उसी तरह फँस गया है जैसे वियतनाम में फँसा था। गले की हड्डी, न निगलते बने न उगलते। इराक़ ही क्यों, पूरा अरब क्षेत्र अमेरिका के ख़िलाफ़ नफ़रत की आग में धधक रहा है और इस बात की उम्मीद की जा सकती है कि अरब अमेरिका के लिए इक्कीसवीं सदी का वियतनाम बन जाएगा।

आज भले ही विश्व पटल पर ये साम्राज्यवादी एकजुट दिखलाई पड़ रहे हों, लेकिन ये जनता के आक्रोश और गुस्से के बारूद को फटने से रोक नहीं पाएँगे। इनके जुल्म और अत्याचारों से त्रस्त दुनिया की अवाम चाहे वह इराक़ी हो, फ़िलिस्तीनी हो या लातिन अमेरिकी, वह अपने मुक्ति संघर्षों के कारवाँ के सैलाब को एक प्रचण्ड तूफान में ज़रूर बदलेगी जिसमें मानवता के हत्यारों के हथियारों के बड़े से बड़े जखीरे तहस-नहस हो जाएँगे।

'इण्डियन आइडल' या 'इण्डियन ईडियट'

(पेज 6 से जारी)

भी ग़ज़ब तरीके से होती है। एक रहस्यमय, गाढ़ी सी पृष्ठभूमि के आगे एक अजीबो-गरीब फिल्मी स्टाइल में हुलिया बनाए कोई व्यक्ति आता है (जो खुद अपराधी ज्यादा लगते हैं) और पता नहीं कैसी घटिया सी आवाज़ बनाकर बोलना शुरू करते हैं, कि भयंकर जुगुप्सा पैदा होती है। लेकिन सबसे गम्भीर बात तो यह है कि किसी भी प्रकार के अपराध के ब्यौरे को कुछ इस तरह पेश किया जाता है कि वह मनोरंजक बन जाए, अक्सर अपराध को नाटक के तौर पर पर्दे पर उतारा जाता है। एक दूसरे को पीछे छोड़ने की होड़ में ये चैनल किसी भी हद तक नीचे गिरने को तैयार हैं। जैसा कि मीडिया की दुनिया में एक कहावत चलती है, समाचार चैनलों की दुनिया तीन 'सी' के बूते चल रही है—क्रिकेट, क्राइम, सिनेमा। राजनीति में जनता की दिलचस्पी ख़त्म होती जा रही है। ऐसे में बेचने को कुछ तो चाहिए ही। तो अपराध से बेहतर माल और क्या हो सकता है? एक चैनल ने हत्या, बलात्कार, और डकैती जैसे मामलों पर एक गेम शो ही बना दिया है। इस कार्यक्रम में आपको वारदात दिखलाई जाती है और फिर पूछा जाता है कि मुजरिम कौन है? अगर आपने सही गेस मारा तो बस, गिफ्ट हैम्परों की बरसात। यानी अपनी अमानवीयता और संवेदनहीनता में अब ये चैनल दर्शकों को भी भागीदार बना रहे हैं। इस तरह की घटनाएँ अब चिन्ता या दुख का विषय नहीं होंगी बल्कि सट्टेबाजी का विषय बन जाएँगी। उसी तरह एक ट्रेण्ड है मानवीय त्रासदी की घटनाओं को 'रियैलिटी शो' के रूप में पेश करना। हाल ही में एक चैनल ने पूरे गुड़िया प्रकरण को इसी तरह पेश किया था। उसके बाद एक वृद्धा को उसके बेटे और बहू द्वारा दस साल तक बन्दी बनाकर रखने के मामले को भी इसी रूप में पेश किया गया। इस प्रकार के तरीकों से मनोरंजन की आदत डालकर मीडिया लोगों को परपीड़न सुख का आदी बना रहा है। ऊपर से तो आदमी 'उफ! उफ!' करता है, लेकिन अन्दर ही अन्दर एक ख़ास तरह की गुदगुदी और सनसनी का भी अनुभव करता है।

यह संस्कृति तेज़ी से फैल रही है और यह बेहद चिन्ता का विषय है। मीडिया की भूमिका हर जगह मूक दर्शक की भी नहीं है, बल्कि अपराध को बेचने और उसका मज़ा लेने वाली की है। लोगों को बताया जा रहा है कि यह मत सोचो कि तुम्हारी ज़िन्दगी की समस्याएँ क्या हैं, 22 करोड़ बेरोज़गारों का क्या होगा, या भुखमरी से मरते बच्चों का क्या होगा; यह सोचो कि अमिताभ की बीमारी क्या है, गांगुली को टीम में लेना चाहिए या नहीं। यानी या तो सोचो मत या प्रायोजित ढंग से सोचो!

ऐसे अपसंस्कृति और संवेदनहीनता के घटाटोप में यह सोचना होगा कि स्वस्थ, संवेदनशील और जनपक्षधर संस्कृति के कारगर विकल्प कैसे तैयार किए जाएँ और संवेदनशीलता की हत्या के हर प्रयास को अपने सांस्कृतिक माध्यमों से बेकार किया जाय।

नया वर्ष

जीवन, संघर्ष और सृजन के नाम

स्वप्नों, संकल्पों और

आशाओं के नाम!